

हममें से अधिकांश के लिए विचार करना, खोज-बीन करना किसी मत-सिद्धान्त अथवा विश्वास विशेष के बँधे-बँधाए ढर्रे के मुताबिक होता है और उसी ढर्रे के हिसाब से चलना-बरतना धार्मिक माना जाता है, प्रज्ञापूर्ण समझा जाता है। सम्यक् विचारणा, सही सोचने की शुरूआत होती है स्वयं को जानने से, सेल्फ-नॉलेज से, न कि धारणाओं और तथ्यों की जानकारी से, जो अज्ञान का ही विस्तार है। लेकिन अगर आप स्वयं को समझना शुरू करते हैं, भले ही आप उम्र में छोटे हों या बड़े, तो आप भरपूर और कभी खत्म न होने वाले खजाने तलाश लेंगे। मगर अन्वेषण के लिए, खोज के लिए अनथक सजगता की, समन्वय की, प्रयोगधर्मिता की, प्रत्येक विचार-भाव, सोच-एहसास के प्रति सजगता की दरकार होती है, और इसी से जिंदगी का खजाना खोज लिया जाता है।

जे. कृष्णमूर्ति
ओहाय, 4 जून, 1944

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

वर्ष : 7 अंक : 2

दिसंबर 2012

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

संपादन : विजय छाबड़ा

सहयोग : शक्ति

कृष्णमूर्ति साहित्य :

	पृष्ठ संख्या
सजगता ही बदलाव लाती है	4
ध्यान स्वयं को जानने का आरंभ है	12
स्वज्ञान तथा अभिव्यक्ति	15
एक अलग तरह का सीखना	16-17
ज़रूरत और इस्तेमाल क्या प्रेम है?	20

मंथन और संवाद :

नये आरंभ से पूर्व	24
संवाद की गंगा में अंतर्मौन के द्वीप	26
‘समय के अंत’ का अध्ययन	27

वार्षिक शुल्क	: रु. 100.00	दो वर्ष	रु. 175.00
पांच वर्ष के लिए	: रु. 400.00	आजीवन	रु. 1000.00

संपादकीय

श्रोताओं और सहभागियों के साथ होती बातचीत में उठने वाले सवाल को लेकर कृष्णमूर्ति क्या करते हैं? क्या ऐसा नहीं लगता कि किसी की संतुष्टि से उनके जवाब का कोई लेना-देना नहीं होता? बस सरोकार है तो तहकीकात से, सत्य के अन्वेषण से। तब सहभागी के लिए खुद से बात के सत्य-असत्य को देख लेने की संभावना बनती है। मन-मानस का शायद स्वभाव ही ऐसा है कि किसी के बताने पर या तो सतही तौर पर बात को स्वीकार लेता है, या जाने-अनजाने उसके प्रतिरोध में जकड़ा जाता है। हम तो आमतौर पर आदी हो जाते हैं मेरा मत, मेरी सोच, मेरा मानना की भाषा में सोचने के, चीजों को स्वीकारने या नकारने के। किसी भी प्रश्न के भीतर उतर कर उसकी तहकीकात करना, उसकी अपनी असलियत को उजागर करना, उसके प्रचलित जवाबों में छुपी भ्रांतियों पर प्रकाश डालना कुछ ऐसा ही है जैसे बोर्ड पर पुराने लिखे हुए को यूं ही पोंछ डालना। हवाई किलेनुमा पहचान को हम क्या यूं ही मिटने दे सकते हैं? पर सहज कर्म, स्वधर्म तो तभी सामने आएगा। यदि किसी भी तरह की परितुष्टि हमारे कर्म से जुड़ी है, तो वह सहज कर्म कैसे हो सकता है?

सजगता ही बदलाव लाती है

कृष्णमूर्ति : हम यह पूछ रहे हैं कि सजग होना क्या है। और सजगता के, अवधान के इस गुणधर्म के साथ—जो अपने आप में गहरा आह्लाद है, क्योंकि इसका अर्थ ही है स्वातन्त्र्य—क्या ऐसा सजग, स्वतन्त्र व्यक्ति इस संसार में रह सकता है? वह गलती कर सकता है, लेकिन उसे सुधार लेता है, पश्चात्ताप या “हे भगवान! मुझसे तो बहुत खराब काम हो गये, अब मैं क्या करूँ?” जैसी बातों के लिए कोई जगह नहीं होती, आप आगे बढ़ जाते हैं। समझ रहे हैं? गलतियाँ मिटा दी जाती हैं, सुधार ली जाती हैं अगर ऐसा मुमकिन हो, लेकिन आप बढ़ते रहते हैं। तो हम पूछ रहे हैं कि इस सजगता, इस अवधान, आह्लाद के इस गुणधर्म के साथ क्या कोई इस संसार में रह सकता है। हाँ, सर, मैं आपसे कहता हूँ कि आप रह सकते हैं। पर यह आपके लिए उत्तर नहीं है। उस आदमी का, उस अन्य आदमी का उपयोग क्या है, जो कह रहा है कि जब आप भूखे हों तो खाना खा सकते हैं? ज़रूरत आपको भोजन की है। आपको किसी रेस्तरां में ले जाकर भोजन दिखा देने से क्या होने वाला है, जब कि आप... समझ रहे हैं आप? यह आपकी ‘वोकेशन’ है—जी हाँ—यही आपका स्वधर्म है : इस सतर्क सजगता के साथ इस संसार में कैसे जीएँ इसका पता लगाना।

प्रश्नकर्ता : यह बात बहुत उत्साह दिलाने वाली है।

कृष्णमूर्ति : यह सज्जन कह रहे हैं कि बात बहुत उत्साह दिलाने वाली है। किसी अन्य द्वारा प्रोत्साहित न हों। क्योंकि तब कोई अन्य आपको हतोत्साहित भी कर सकता है। किंतु यदि आप जो संभव है उसे देख पाते हैं, तो ज़बरदस्त ऊर्जा निर्मुक्त होती है। आप समझ रहे हैं, सर? संभव!

तो सजगता के इस गुणधर्म के साथ—जो किसी विधि, किसी प्रणाली, किसी अनुशासन का अनुसरण नहीं, बल्कि अवलोकन करना, देखना है—आप देखते हैं कि आप बैठे कैसे हैं, अपने शरीर की बेचैनी को देखते हैं, अपनी उँगलियों की चुलबुलाहट को देखते हैं। ठीक है? यह शरीरविषयक अन्वेषण है, आप शरीर को देखते हैं—समझ रहे हैं, सर?—इसे देखते हैं, निर्देशित नहीं करते हैं, यह नहीं बताते हैं कि इसे यह करना चाहिए या वह नहीं करना चाहिए, अपितु बस देखते हैं; जब आप इतनी सतर्कता से शरीर को देखेंगे तो आप पाएँगे कि शरीर एकदम स्थिर हो जाता है।

प्र.: लेकिन सर, ऐसा मुख्यतः केवल तभी संभव है, जब आप किसी धार्मिक समुदाय के साथ रह रहे हों।

कृ.: 'ऐसा तभी संभव है, जब आप किसी धार्मिक समुदाय के साथ रह रहे हों।'

प्र.: केवल तभी नहीं, अपितु मुख्यतः। यदि आपको समाज में रहना हो तो यह बहुत कठिन होगा।

कृ.: 'यदि आपको समाज में रहना हो जो इतना भ्रष्ट, इतना अधार्मिक है, तो यह बहुत कठिन होगा।' सर, कठिन तो सब कुछ है।

प्र.: नहीं सर, मैंने इसका कई अवसरों पर अभ्यास किया है।

कृ.: मैं आपसे कह रहा हूँ सर, अभ्यास मत करिए। सर, मेरी आपसे विनती है कि किसी चीज़ का अभ्यास मत करिए। नहीं, मैं जो कह रहा हूँ उसे सुनिए; किसी चीज़ का अभ्यास नहीं करना है। यदि आप अभ्यास करते हैं, तो आपका मन यान्त्रिक हो जाता है।

प्र.: मैं केवल उस शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूँ, मेरा अभिप्राय उस तरह का नहीं है; शब्द बहुत सीमित करने वाले होते हैं, सर।

कृ.: मैं यह जानता हूँ, सर।

प्र.: यदि आप समाज की संरचना द्वारा ही भ्रमित हैं, तो भी आप करके देखने की कोशिश कर सकते हैं।

कृ.: सर, समाज के ज़बरदस्त दबाव से हम सभी अवगत हैं। समाज है आपके पिता, आपकी माता, आपके पड़ोसी, आपके राजनेता, यही तो समाज है। मैं इसके खतरों को जानता हूँ, हम सभी इससे, इस सब की आपराधिकता से भली-भाँति परिचित हैं। और मैं स्वयं से कहता हूँ : इस समाज में मैं क्या करूँ? इससे भाग जाऊँ? किसी धार्मिक समुदाय में शामिल हो जाऊँ? किसी कल्पनालोक में पलायन कर जाऊँ, कोई साम्यवादी, समाजवादी या इस तरह का कुछ बन जाऊँ? तो यह सब मैंने स्पष्ट किया ही है।

प्र.: आप समाज को बदलने को साम्यवादी बन जाने से क्यों जोड़ते हैं?

कृ.: मैं ऐसा नहीं कर रहा, सर। मैं समाज में बदलाव को साम्यवाद, या कैथोलिक, या इस अथवा उस से नहीं जोड़ रहा हूँ। यदि आप किसी समुदाय वाले हो जाते हैं, तो आप समाज को नहीं बदल सकते। उस दिन एक सज्जन मुझसे मिलने आये—मुझे पता नहीं क्यों—और वह बोले, “अंततः मैं स्वतंत्र हूँ। और स्वतंत्र होने के कारण मैं कैथोलिक चर्च में दीक्षित हो गया हूँ।” जी हाँ! क्योंकि इनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ है चुनने की स्वतंत्रता। इसे समझिए। इसकी पड़ताल कीजिए, सर। चुनने की स्वतंत्रता, ठीक? आप चुनते कब हैं? जब आप भ्रमित होते हैं, जब आप संशय में होते हैं, आप कहते हैं : मैं यह चुनता हूँ। ठीक है? लेकिन जब आप एकदम स्पष्टता से देख पाते हैं, तब चुनने वाली बात नहीं होती। मन केवल तभी चुनता है, जब यह भ्रमित होता है। और मन जब स्पष्ट होता है तो चयन का प्रश्न नहीं उठता। इस पर मंथन कीजिए।

तो आप पूछ रहे हैं : ऐसी स्पष्टता के साथ, बिना किसी चयन के, पूर्ण सजगतासहित क्या व्यक्ति इस संसार में रह

सकता है। ठीक? ऐसा करके देखिए सर, ज़रूर करके देखिए; और आप उस असीम संभावना को देख पाएँगे। आप देखते हैं, खेल-खेल में ही सही—जब आप बात कर रहे हों, जब आप गाड़ी चला रहे हों, कैसे आप गाड़ी चलाते हैं अपना मुँह खोले हुए—तो इस सब को आप बस देखते हैं। जब आप बातें कर रहे होते हैं तो क्या आप गपशप में मुब्तिला होते हैं? आपको पता है कि किसी न किसी के बारे में गपशप करना समय बरबाद करने के लोगों के पसंदीदा तरीकों में से एक है। देखिए, ताकि आपका मन विस्मयजनक रूप से संवेदनशील हो सके; यही संवेदनक्षम प्रज्ञा है जो काम करेगी। जी, सर?

प्र.: क्या सोचना और सजग होना सहगामी है, साथ-साथ चल सकते हैं?

कृ.: 'सोचना और सजग होना क्या सहगामी हो सकते हैं'; क्या आप सजग होते हैं कि आप सोच रहे हैं? कृपया यह प्रश्न कीजिए। मैं आपसे यह प्रश्न कर रहा हूँ। जब आप सोच रहे होते हैं तो क्या आप सजग होते हैं? नहीं, मुझे उत्तर मत दीजिए, खोजिए, यह वाकई एक दिलचस्प प्रश्न है, इसमें पैठिए...

प्रश्न था : क्या सोचना और सजगता सहगामी हैं, अविरोद्ध हैं? अब मेरा प्रश्न है: क्या आप सजग होते हैं कि आप सोच रहे हैं? सजगता अर्थात देखना, बिना किसी विकृति के, बिना किसी प्रयास के, बिना कुछ सुधारे-जोड़े, बिना संगत-असंगत ठहराए, सिर्फ देखना।

प्र.: क्षण भर के लिए।

कृ.: नहीं, क्षण भर या अगले क्षण नहीं। इसे देखिए, सर। क्या आप सजग होते हैं कि आप सोच रहे हैं? अथवा, क्या सोचना तत्काल होता है—आप बस सोचते हैं? मैं आपसे कुछ पूछता हूँ और तत्काल एक उत्तर आता है। अब आप इसमें अगर थोड़ा सा और आगे जाएँ, तो एक बड़ी रोचक बात उजागर होगी। पुराना मस्तिष्क, जो स्मृतियों, जानकारी, अनुभव से ढुँसा

पड़ा है, यह पुराना मस्तिष्क किसी भी चुनौती का तत्काल प्रत्युत्तर देता है; है न? मैं कहता हूँ, “आप बदशकल हैं; आप कहते हैं, “नहीं!”—समझ रहे हैं? प्रत्युत्तर तुरंत आता है, और यह प्रत्युत्तर है पुराने मस्तिष्क का; ठीक? अब, यदि आप सजग होते हैं, तो चुनौती तथा पुराने के प्रत्युत्तर के मध्य एक रिक्ति, एक अंतराल होता है, और चूँकि एक अंतराल होता है, तो संभवतः एक नवीन प्रत्युत्तर आएगा। जो मैं कह रहा हूँ आप समझ रहे हैं? आपको यह सब समझ आ रहा है? नहीं। अच्छा, ठीक है।

देखिए सर, आप यह सब अपने आप में देख सकते हैं, यदि आप स्वयं को देख रहे हों। यह किसी भी व्यक्ति द्वारा रची गयी किताब से, बाइबल या गीता समेत, या किसी भी अन्य किताब से, बढ़कर है। यदि आप अपने आप को देखते हैं तो आप यह देख पाएँगे कि मस्तिष्क का एक लक्षण, एक स्वभाव है जो सर्वदा पुराना है, पुरानी परंपरा, पुरानी संस्कारबद्धता, और किसी भी चुनौती का—जो सर्वदा नवीन है, जैसा कि इसे होना ही है अन्यथा यह चुनौती नहीं है—ऐसी चुनौती का प्रत्युत्तर यह पुराना मस्तिष्क तुरंत देता है। ठीक? मैं ईसाई हूँ—लड़ाई शुरू! समझ रहे हैं? मैं साम्यवादी हूँ, या यह हूँ, अथवा वह हूँ, और अपनी जो भी पुरानी संस्कारबद्धता है, उसके हिसाब से मस्तिष्क प्रत्युत्तर देता है। अब अगर आप सजग हैं तो आप देख पाएँगे कि पुराने मस्तिष्क द्वारा तुरन्त प्रत्युत्तर दिया जाना अनिवार्यरूपेण आवश्यक हो, ऐसा नहीं है। बल्कि चुनौती और प्रत्युत्तर के बीच एक रिक्त स्थान हो सकता है, एक अंतराल। इस अंतराल में प्रत्युत्तर नया मन देगा। आप इसे करके देखिए; करिए तो, और आप खुद ही देख लेंगे। मैं जो कह रहा हूँ, आप समझ रहे हैं? क्या आपको बहुत थकान महसूस हो रही है? अगर आप इसकी गहराई में जाते हैं, तो यह वस्तुतः बहुत अर्थपूर्ण है। अद्भुत है यह। क्योंकि हमारा पुराना मस्तिष्क, जो पश्चिम में, पीछे की तरफ है वगैरह (मैं इस सब में निष्णात नहीं हूँ), यह पुराना मस्तिष्क सारा समय सुख के अनुसार, पीड़ा के अनुसार, बस

इसी तरह के ढर्रे पर प्रतिक्रिया किया करता है। और, चूँकि यह सारा समय प्रतिक्रिया किए जा रहा है, जवाब दिए जा रहा है, किसी नये प्रत्युत्तर ही गुंजाइश ही नहीं रहती। ठीक है? नया प्रत्युत्तर तभी घटित हो सकता है, जब पुराना मस्तिष्क पर्याप्त रूप से चुप रहे। ठीक? इस चुप्पी के लिए, इस मौन के लिए ऐसी सजगता का होना ज़रूरी है, जिसमें कोई औचित्य-प्रतिपादन यानी सही-गलत ठहराना, कोई निंदा, कोई तादात्म्यभाव अर्थात् पहचान जोड़ना न हो। समझ रहे हैं आप? सजगता! इस सजगता में वह पुराना मन थोड़ा और शांत हो जाता है, और इसलिए नवीन मस्तिष्क सक्रिय हो पाता है। आप खुद इसकी गहराई में जाएँ।

और इसी कारण निद्रा और स्वप्न के अनुसंधान की बात आती है और वह सब भी इसी का हिस्सा है। लेकिन उस पर हम फिर कभी चर्चा करेंगे, अभी नहीं।

प्र.: मैं सोच रहा था कि यदि संभव हो तो आप अपने शब्दों द्वारा हमारे सामने यह तस्वीर ला पाते कि यह संसार कैसा बन जाएगा अगर हर कोई एक समग्र व्यक्ति हो।

कृ.: यदि सभी मनुष्य समग्र हों तो यह संसार कैसा होगा, आप इसका एक शाब्दिक खाका चाहते हैं। मेरे ख्याल से मैं तो वह शख्स नहीं जो आपको ऐसी तस्वीर मुहैया कराए, क्योंकि वह सब तो समय व्यर्थ करना हुआ। 'क्या होगा', यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्व उसका है, जो है।

प्र.: जैसे ही मैं स्वयं के प्रति जागरूक होता हूँ, मैं पलायन की, भागने की कोशिश करता हूँ। जैसे ही मुझे अपने सोचने का भान होता है, वह सोच जो भी है, मैं उसे बदलने लगता हूँ। जैसे ही मैं इसके तई जागता हूँ, इसमें तरमीम करने लगता हूँ।

कृ.: जैसे ही मैं इसके तई जागता हूँ, मैं इसे बदल देना चाहता हूँ, चाहे वह मेरी मुखमुद्रा हो, या सोचने का कोई ढंग-ढर्रा, जिस क्षण मुझे इसका भान होता है, तुरंत प्रत्युत्तर आता है उसे बदल देने का, या बदलने की माँग उभरती है। यही

मैं कह रहा हूँ। ‘बदल दो’ का यह तुरत-फुरत प्रत्युत्तर पुराने मस्तिष्क का हिस्सा है क्योंकि यह कहने लगता है, “यह ठीक नहीं है; इसे उस ढंग से होना चाहिए।” बिना किसी चयन के सजग होना ही पुराने मस्तिष्क को चुप करना है। सर, पेड़ों के प्रति सजग होना—देखिए, आप सजग हैं इन पर्वतों के प्रति, क्या आप इनके संदर्भ में कुछ कर सकते हैं? कुछ भी कर सकते हैं क्या आप? ये तो बस हैं, यह चित्रित सी रेखा, यह ऊँचाई, यह सौंदर्य, ये वादियाँ, आप तो केवल सजग होते हैं इस सब के प्रति। ठीक इसी तरह, अपने खुद के प्रति सजग हो जाइए, बिना इसे बदलने की चाह-प्रक्रिया के। तब, नये मस्तिष्क का प्रत्युत्तर बदलाव के एक बिल्कुल भिन्न गुणधर्म को अस्तित्व में लाता है—कुछ पूरी तरह से नया।

प्र.: (सुनने में अस्पष्ट)

कृ.: नहीं मैडम, जिस क्षण नये मस्तिष्क और पुराने मस्तिष्क के बीच विभाजन होता है—हे भगवान, मैं इस विषय के विस्तार में और नहीं जा सकता! आप कृपया इसे देखिए तो; आपके और अन्य के मध्य एक विभाजन है, आपके और उस पेड़ के बीच, आपके और उस पर्वत के बीच, आपके और आपके पति, पत्नी, बच्चे व बाकी सब के बीच एक विभाजन है। यह विभाजन इसलिए है क्योंकि हममें हमेशा एक सेंसर, एक संशोधक-नियंत्रक मौजूद है—संशोधक, जो कहता रहता है : यह सही है, यह गलत है, यह होना चाहिए, यह नहीं होना चाहिए; तो यह तुरंत फैसला सुनाना हमारी संस्कारबद्धता का भाग है, हमारे ढर्रे-ढाँचे का भाग है, हमारे समाज का, हमारी संस्कृति का हिस्सा है। ठीक? अब यदि इस फैसले की प्रक्रिया के प्रति सजगता है, आप यदि इसके प्रति, बिना कुछ चुने, सजग हैं, तो उस सजगता में कोई विभाजन है ही नहीं।

प्र.: इसका यह अनुमान ही...

कृ.: अनुमान नहीं, सर!

प्र.: (सुनने में अस्पष्ट)

कृ.: हमने भी यह कहा था, सर, यदि आप इस सारी समस्या से बस बौद्धिक रूप से पेश आ रहे हैं, तो यह एक दुःस्वप्न बन जाती है। लेकिन यदि आप इससे भावुकता से पेश आते हैं, तो भी यह अलग तरह का दुःस्वप्न बनेगी। किन्तु यदि आप इस समस्या को उसी रूप में देखते-समझते हैं जैसी कि वस्तुतः यह है : यानी कि आप उस संस्कृति से मिले संस्कारों में जकड़े हैं जिसमें आप रहते हैं। ठीक? यह तो एक तथ्य है, है कि नहीं?

प्र.: जब मुझे मुक्ति की अनुभूति होती है तो यह देखने से नहीं आती, इसे मैं मर्जी-ज़बरदस्ती से लाना चाहूँ, आरोपित करूँ, तो भी यह अनुभूति नहीं होती.... (आगे अस्पष्ट)

कृ.: यह तो बस...

प्र.: किन्तु, ऐसा सारा समय अधिकतर लोगों के साथ हो रहा है।

कृ.: सर, मैं नहीं जानता कि सारा समय अधिकतर लोगों के साथ क्या हो रहा है। लेकिन मैं यह कह रहा हूँ कि एक मनुष्य के तौर पर उपलब्धि के ढर्रे से हम इतने संस्कारित हैं, चाहे व्यापार के क्षेत्र में हो या धर्म के क्षेत्र में, किसी भी कोण से, हम कुछ हासिल करने की मनोवृत्ति के संस्कार से ग्रस्त हैं। और इस संस्कारबद्धता के प्रति सजग होने पर आपको स्पष्ट होता है कि अगर आप चुन रहे हैं, अगर आप कह रहे हैं: “मुझे हासिल करने का प्रयास नहीं करना चाहिए”, तब आप अपने लिए अवरोध खड़ा कर रहे हैं, तब ज़्यादा बड़ा द्वन्द्व उभरता है।

प्र.: (सुनने में अस्पष्ट)

कृ.: पता है, सर! तो, उस सुनिश्चित प्रक्रिया के प्रति व्यक्ति यदि सजग होता है, तो वह सजगता ही उस ढर्रे को, उस प्रारूप को बदल देती है।

सानेन, युवा सहभागियों से प्रथम संवाद, 21 जुलाई 1970
अनुवाद : योगेश तिवारी

ध्यान स्वयं को जानने का आरंभ है

प्रश्न : मन की शान्ति पाने के लिए क्या मेरे लिए अपने विचारों को नियन्त्रित करना सीखना आवश्यक नहीं है?

कृष्णमूर्ति : इस प्रश्न को भली भाँति समझने के लिए हमें इसकी गहराई तक जाना होगा, और उसके लिए आवश्यकता है करीब से तवज्जो देने की। आशा है आप इस कदर थके हुए नहीं हैं कि इसे समझ न पाएं।

मेरा मन भटक जाता है; क्यों? मैं किसी चित्र, किसी वाक्यांश, किसी धारणा या किसी छवि के विषय में सोचना चाहता हूँ, और ऐसा करते हुए मैं देखता हूँ कि मेरा मन रेल की पटरी अथवा किसी ऐसी घटना में खो गया है, जो कल घटित हुई थी। एक विचार आया और चला गया, दूसरे ने उसका स्थान ले लिया। इस प्रकार मैं हर उठने वाले विचार का परीक्षण करता हूँ। यह बुद्धिमत्ता है न? परन्तु आप अपने विचार को किसी वस्तु पर केंद्रित करने के लिए यत्न करते हैं। आपको इसे केंद्रित क्यों करना चाहिए? यदि आप आने वाले विचार में दिलचस्पी रखते हैं, तो यह आपको अपना महत्त्व समझाता है। विचारों का भटक जाना विचलन नहीं है- इसे कोई नाम मत दीजिए। पीछा करिए विचारों में आई उस भटकन का, उस विचलन का, गहराई तक पता लगाइए कि अन्ततः मन क्यों भटका। जब वह विचलन, वह भटकाव पूर्णतया समझ में आ जाता है तो वह वाला विचलन समाप्त हो जाता है। जब फिर ऐसा हो तो उसे भी समझिए। मन अनगिनत याचनाओं और लालसाओं से ही बना है, और जब यह उन्हें समझ लेता है तो यह एक ऐसी सजगता में समर्थ होता है जिसमें सब कुछ समाया है, कुछ भी उसके बाहर या अलग-थलग नहीं है। एकाग्रता तो अलगाव है, यह किसी वस्तु के खिलाफ प्रतिरोध है। ऐसी एकाग्रता आँखों पर पट्टी बांधने जैसी है, अतः

स्पष्टतया निरर्थक है, यह यथार्थ की ओर अग्रसर नहीं करती। जब कोई बच्चा किसी खिलौने में दिलचस्पी रखता है तो उसे कोई भटकाव नहीं होता।

श्रोताओं की टिप्पणी : परन्तु वह तो क्षणिक होता है।

कृष्णमूर्ति : आप का मतलब क्या है? क्या आप एक मजबूत दीवार चाहते हैं जिसके भीतर आप सुरक्षित रहें? क्या आप एक मनुष्य हैं या कोई यंत्र, जो बस अपनी ही सीमा में, अपनी परिधि में ही काम करे? सभी प्रकार की एकाग्रता अलगाव है। उस एकाग्र अलगाव में कुछ भी, आपकी कुछ बनने की इच्छा को भेद नहीं सकता। अतः एकाग्रता, जिस का अभ्यास अनेक लोग करते हैं, वास्तविक ध्यान का नकार है। ध्यान स्वयं को जानने का आरम्भ है, और बिना स्वज्ञान के आप ध्यान कर नहीं सकते। बिना स्वज्ञान के, आप के ध्यान का कोई महत्त्व नहीं है, यह केवल एक ख्याली उड़ान है। अतः एकाग्रता जो अलगाव का, प्रतिरोध का एक क्रम है, जो प्रतिरोध रहित मनःस्थिति के किवाड़ नहीं खोल सकता। यदि आप अपने बच्चे का प्रतिरोध करते हैं तो आप उसे समझ नहीं रहे हैं। आपको उसकी सभी उच्छृंखलताओं और प्रत्येक मनोदशा के प्रति खुला होना होगा। ठीक उसी प्रकार अपने आप को समझने के लिए, आपको मन की प्रत्येक गतिविधि तथा उठने वाले हर विचार के प्रति जीवंत होना होगा। उठने वाले हर विचार में कोई रुचि निहित होती है- इसे विचलन कह कर निन्दित मत ठहराइए, पूरी तरह से, अंत तक इसका पीछा करिए, इसे देखिए-समझिए। जो कहा जा रहा है आप उस पर एकाग्र होना चाहते हैं और आप का मन भटक जाता है कि कल शाम किसी मित्र ने क्या कहा था। इस द्वन्द्व को आप विचलन कहते हैं। अतः आप कहते हैं, “एकाग्रता यानी मन को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करना सीखने में मेरी सहायता कीजिए।” परन्तु यदि आप समझ लें कि विचलन किस वजह से होता है तो अलग से एकाग्र होने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती : तब जो भी आप करते हैं वह एकाग्रता ही तो

होती है। अतः समस्या मन का भटक जाना नहीं, अपितु यह है कि मन भटकता क्यों है। जो कहा जा रहा है, जब मन उससे भटक रहा होता है, तो इसका मतलब हुआ कि उस कहे जा रहे में आपकी दिलचस्पी नहीं है। यदि आपकी दिलचस्पी है तो आप भटकेंगे ही नहीं। आप सोचते हैं कि आपको किसी चित्र विशेष, किसी धारणा विशेष या भाषण विशेष में दिलचस्पी होनी ही चाहिए, परन्तु आपकी दिलचस्पी उसमें है नहीं, इसलिए मन कहीं भी भटक जाता है। आप मान क्यों नहीं लेते कि आपकी दिलचस्पी नहीं है, और मन को भटकने क्यों नहीं देते? जब आपकी दिलचस्पी ही नहीं तो मन को एकाग्र करने की कोशिश बेकार है जो केवल द्वन्द्व उत्पन्न करती है—जो आप सोचते हैं कि आपको होना चाहिए और वास्तविकता के बीच। ऐसा करना ब्रेक लगी कार को चलाने के तुल्य है। ऐसी एकाग्रता व्यर्थ है। यह अलगाव है, किसी चीज़ को दूर हटाना। तो पहले उस भटकाव को ही क्यों न कबूल कर लें? वह तथ्य है। जब मन मौन हो जाता है, जब सब समस्याएं सुलट जाती हैं, तो यह उस ताल की भाँति होता है, जिसमें पानी स्थिर होता है, जिसमें आप साफ देख सकते हैं। जब यह समस्याओं के जाल में जकड़ा होता है, तो यह खामोश नहीं होता, क्योंकि तब आप दमन का सहारा लेने लगते हैं। जब मन प्रत्येक विचार के पीछे जाता है, उसे समझता है, तो कोई विचलन, कोई भटकाव नहीं होता, और तब यह चुप हो जाता है। केवल स्वतंत्रता में ही मन मौन हो पाता है। जब मन मौन होता है, इसका ऊपरी भाग मात्र नहीं, अपितु पूरा का पूरा, जब यह तमाम मूल्यों से तथा इसके अपने ही प्रक्षेपणों के पीछे भागमभाग से मुक्त होता है, तब कोई भटकाव, कोई विचलन नहीं होता; और केवल तभी यथार्थ का प्रादुर्भाव होता है।

राजामुंदरी, 20 नवम्बर 1949
अनुवाद : ओमप्रकाश अरोड़ा

स्वज्ञान तथा अभिव्यक्ति

प्रश्न : मैं एक लेखक हूँ। कुछ वर्ष पूर्व मैंने आपको सुना और तबसे मुझे लिखने की इच्छा नहीं होती। क्या स्वज्ञान, स्वयं को जानने के परिणामस्वरूप बाह्य अभिव्यक्ति में शिथिलता का आ जाना अपरिहार्य है?

कृ : आप लिखते क्यों हैं? क्या आप इसे आत्मतुष्टि के लिए करते हैं? या आप इसे प्रसिद्धि पाने के लिए करते हैं? क्या आप जीविकोपार्जन के लिए लिखते हैं? या फिर, आप लिखते हैं बिना किसी प्रयोजन के, क्योंकि भीतर से आप इतने जीवंत हैं, इतने समृद्ध हैं कि यह एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, आपका पेशा नहीं, और न ही यह आपके लिए आत्मतुष्टि का साधन है। यदि यह आत्मतुष्टि का साधन है। तो आप जितना अधिक अपने आप को जानते हैं, जितना अधिक स्वयं का अध्ययन करते हैं, जितना अधिक स्वज्ञान होता है, शब्दों में अभिव्यक्ति उतनी ही कम होती चली जाती है। जब तक आप राज्य के द्वारा, राजनीति के द्वारा, धर्म के द्वारा, आंदोलनों के द्वारा, भले कामों के द्वारा, कविता लेखन के द्वारा या पेंटिंग के द्वारा आत्मतुष्टि प्राप्त कर रहे हैं, तब तक जितना अधिक आप स्वयं को जानते जाएंगे, इन गतिविधियों में शिथिलता आती जाएगी।

जहाँ किसी कर्म के द्वारा आप आत्मसंतुष्टि प्राप्त करते हैं, उल्लास प्राप्त करते हैं, पेशेवर तौर पर कोई मुकाम हासिल करते हैं : एक राजनीतिज्ञ, एक महापुरुष, एक यशस्वी व्यक्ति; जब तक आप अपनी बाह्य गतिविधियों को अपने स्व के विस्तार का साधन बनाते हैं तब तक जितना ही स्वज्ञान होगा, उतनी ही इन गतिविधियों में कमी आएगी। यह समझना बहुत आवश्यक है क्योंकि हममें से अधिकांश किसी न किसी माध्यम से आत्मतुष्टि प्राप्त कर रहे हैं, वह चाहे पत्नी हो, पति हो, बच्चे हों, सद्गुण

A Different kind of Learning

I think there is a process of learning which is not related to wanting to be taught. Being confused, most of us want to find someone who will help us not to be confused, and therefore we are merely learning or acquiring knowledge in order to conform to a particular pattern; and it seems to me that all such forms of learning must invariably lead not only to further confusion, but also to deterioration of the mind. I think there is a different kind of learning, a learning which is an inquiry into ourselves and in which there is no teacher and no taught, neither the disciple nor the guru. When you begin to inquire into the operation of your own mind, when you observe your own thinking, your daily activities and feelings, you cannot be taught because there is not one to teach you. You cannot base your inquiry on any authority, on any assumption, on any previous knowledge. If you do, then you are merely conforming to the pattern of what you already know, and therefore you are no longer learning about yourself.

I think it is very important to learn about oneself, because it is only then that the mind can be emptied of the old; and unless the mind is emptied of the old there can be no new impulse. It is this new, creative impulse that is essential if the individual is to bring about a different world, a different relationship, a different structure of morality. And it is only through totally emptying the mind of the old that the new impulse can come into being, give it whatever name you like: the impulse of reality, the grace of God, the feeling of something completely new, unpremeditated, something which has never been thought of, which has not been put together by the mind. Without that extraordinarily creative impulse of reality, do what you will to clear up the confusion and bring order in the social structure, it can only lead to further misery.

– J. Krishnamurti
Mumbai, 20 February 1957

एक अलग तरह का सीखना

मुझे लगता है कि सीखने की एक प्रक्रिया है जो पढ़ाए-सिखाए जाने की चाह से एकदम अलग है। खुद को उलझन में पाकर हममें से ज्यादातर ऐसे किसी व्यक्ति की तलाश में रहते हैं जो हमारी गुत्थियों को सुलझाने में मदद कर सके, और इसलिए हम केवल एक विशेष पैटर्न के अनुरूप सीखने लगते हैं, एक सांचे के भीतर, एक ढर्रे में ज्ञान अर्जित करने में लग जाते हैं; और मुझे लगता है कि सीखने के ऐसे सभी तौर-तरीके हमें न केवल और अधिक उलझा देते हैं, बल्कि मन को ही मंद-कुंद बना देते हैं। मेरी समझ में एक अलग तरह का सीखना होता है, सीखने की एक ऐसी प्रक्रिया जिसका सरोकार अपने आप की जाँच-पड़ताल से है और जिसमें न कोई शिक्षक है और न ही विद्यार्थी, न तो शिष्य और न ही गुरु है। यह सीखना होता है जब आप अपने ही मन के तौर-तरीकों की खोजबीन शुरू करते हैं, अपनी सोच, अपनी दैनिक गतिविधियों और भावनाओं को देखने-भाँपने लगते हैं, और यह आपको सिखाया नहीं जा सकता क्योंकि कोई आपको सिखाने वाला है ही नहीं। आप किसी भी ज्ञानपीठ को, किसी भी धारणा या मान्यता को, किसी भी पुरानी जानकारी को अपनी जाँच का आधार नहीं बना सकते। यदि आप ऐसा करते हैं, तो आप केवल अपनी पुरानी जानकारी के ढर्रे पर चल रहे होते हैं, तब आप अपने बारे में नहीं सीख रहे होते।

मुझे लगता है कि अपने बारे में सीखना-जानना निहायत जरूरी है, क्योंकि तभी तो मन से पुराने असबाब को हटाकर उसे खाली किया जा सकता है; और जब तक मन से पुराने ढेर को हटाकर खाली नहीं कर दिया जाता, किसी नयी प्रेरणा का, किसी नूतन रंग-लय का उभरना संभव नहीं। यह नूतनता, सृजनात्मकता आवश्यक है, यदि व्यक्ति को एक अलग दुनिया, एक अलग रिश्ते, नैतिकता की एक अलग संरचना का ख्याल है, यदि उसे इस सब की परवाह है। मन को उसके तमाम जोड़-जमा से पूरी तरह से खाली कर देने पर ही नयी उमंग की, नये रचनात्मक आवेग की संभावना बनती है, तब इसे आप जो भी नाम दें: वास्तविकता का संस्पर्श, ईश्वर की कृपा, पूरी तरह से कुछ नूतन की भावना, अपूर्वदृष्ट, ऐसा कुछ जिसके बारे में कभी सोचा भी न था, जो मन के जमा-जोड़ का परिणाम नहीं है। यथार्थ के उस असाधारण रचनात्मक संस्पर्श के बिना, आप भ्रम की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, उलझनों को सुलझाने के लिए और सामाजिक संरचना में व्यवस्था लाने के लिए जो मर्जी कर लीजिए, यह आगे दुख के गर्त में ही ले जाने वाला है।

अनुवाद : विजय छावड़ा

हों या और कुछ हो। यदि किसी बड़े जनसमूह को संबोधित करके, कोई कविता रचके आप कुछ हो रहे हैं, आपका 'स्व' कुछ बन रहा है, तो आपका स्वज्ञान बढ़ने के साथ-साथ आपका होना, आपके 'स्व' का होना कम होता जाएगा। 'मैं' की तुष्टि किसी भी कर्म से नहीं हो पाती।

किन्तु आप देखें, बचपन से ही हम कुछ पाने के लिए बड़े किए जाते हैं। हमारे सामने अनगिनत नायक, अनेक महान संत, ढेर सारे बड़े लोग होते हैं जिनका हमें अनुसरण करना होता है, और ऐसे गुरु भी होते हैं जो हमें हमारा मनचाहा देने को तैयार बैठे हैं,

तो इस प्रकार हम अपनी स्वयं की आत्मतुष्टि के जाल में अनवरत फंसते जाते हैं। जहाँ आत्मतुष्टि है वहाँ कुंठा भी है और कुंठा के साथ भय है, और इस प्रकार हम पुनः उसी जाल में फँस जाया करते हैं।

किन्तु सर्जनात्मकता का एक स्वतःस्फूर्त प्रवाह भी है जो आत्मतुष्टि का परिणाम नहीं है। यदि हम वास्तव में इसे समझ सकें तो हमारी गतिविधियों में ज़बरदस्त परिवर्तन आएगा। अपनी वर्तमान गतिविधियों के ज़रिये हम उस सर्जनात्मक ऊर्जा के प्रवाह को निर्मुक्त नहीं कर रहे हैं; सामाजिक सुधार, लेखन, पुलों के निर्माण या पेंटिंग आदि वर्तमान में जो भी हमारी गतिविधियाँ हैं उनके ज़रिये हम सृजन तो नहीं ही कर रहे हैं। आखिरकार, अपने को हिन्दू, ईसाई या कम्युनिस्ट कहके क्या आप अपनी आत्मतुष्टि ही नहीं कर रहे होते? जब आप एक कम्युनिस्ट या एक सोशलिस्ट या एक धार्मिक मनुष्य तौर पर कार्य करते हैं, तो क्या वह गतिविधि आपको, आपके 'मैं' को कुछ बनने, करने, होने, उस काम में लगे रहने को उकसा नहीं रही है? क्या आप समस्याएं पैदा नहीं करते? क्या आप क्रूर नहीं हैं? क्या आप विभाजन, विध्वंस में, यातना-शिविर लगवाने और ऐसी ही तमाम खुराफात में नहीं लगे हैं? हो सकता है यह आपका धर्म हो, आपको निर्मुक्त करता हो, किन्तु निर्मुक्ति की, छुटकारे की

इस प्रक्रिया में आप न केवल अपने लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी दुख का निर्माण कर रहे हैं। बेशक, यह सर्जनात्मकता नहीं है, यह आत्मतुष्टि की इच्छा से मन की सच्ची निजात नहीं है।

मैं एक भिन्न निर्मुक्ति की, रिलीज़ की, एक ऐसी सर्जनात्मकता की बात कर रहा हूँ जो संस्कारग्रस्त कर्म के घेरे में कैद नहीं है और उस सर्जनात्मकता का आगमन तभी हो पाता है जब मैं प्रयास की प्रक्रिया को समझ लेता हूँ, जब कुछ भी अनुकृत, नकल नहीं होता। तमाम प्रयास नकल ही हैं और नकल का वजूद तभी होता है जब हम कुछ और बनने का प्रयास कर रहे होते हैं। केवल तभी जब मैं का होना रुक जाता है, जब मैं पूरी तरह से नाचीज़ होता हूँ—जो कोई सद्गुण नहीं है, जिसके लिए किसी संघर्ष-प्रयास की दरकार नहीं है—एक ऐसी अवस्था अस्तित्व में आती है जब मैं स्वज्ञान की, स्वयं को जानने की समग्र प्रक्रिया को समझ पाता हूँ। और उस अवस्था में ही एक मूलभूत, समयातीत निर्मुक्ति, रिलीज़ संभव है, जिसमें सर्जनात्मकता विद्यमान है।

मुंबई, 11 फरवरी 1953

अनुवाद : अमित प्रताप सिंह

विद्यार्थी : सर, जीवन क्या है?

कृष्णमूर्ति : जीवन है यह विस्तीर्ण धरती, और वह सब जो इस धरती पर पैदा होता है और बढ़ता है, ये दरख्त, ये पंछी, ये पशु : ये चीते, ये बंदर, और ये मानव-बंदर; यह सब जीवन है। सारे झगड़े, तमाम बदहालियाँ, सभी दुख, ये बीमारियाँ, और ये पीड़ा—यह सब जीवन है। सुख जीवन है। प्यार पाने की तड़प और प्यार करना जीवन है। मृत्यु जीवन है।

- ऋषि वैली, जनवरी 20, 1970

जखुरत और इस्तेमाल क्या प्रेम है?

प्र : अपनी ही परितुष्टि के लिए दूसरे का इस्तेमाल करने पर आधारित रहने वाले संबंध की आपने बात की है, और आप एक ऐसी अवस्था की ओर भी इशारा करते रहे हैं जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम से आपका अभिप्राय क्या है?

कृ : हम जानते हैं कि हमारे संबंध क्या हैं—एक दूसरे का तुष्टीकरण और इस्तेमाल, भले ही हम इसे प्रेम शब्द का जामा पहना दें। इस्तेमाल में, जिसका इस्तेमाल किया जा रहा होता है उसके प्रति और उसकी हिफाजत के लिए सौम्यता बरती जाती है। हम अपनी सीमाओं, अपनी पुस्तकों, अपनी संपत्तियों की हिफाजत करते हैं, उसी प्रकार हम अपनी पत्नियों, अपने परिवारों, और समाज की सुरक्षा करते हैं, क्योंकि उनके बिना हम अकेले रह जाएंगे, कहीं के नहीं रहेंगे। बच्चे के बिना माता-पिता अकेला महसूस करते हैं, आप उम्मीद करते हैं कि जो आप नहीं बन सके वह आपका बच्चा बन जाएगा। इस प्रकार बच्चा आपकी अहम्मन्यता का साधन बन जाता है। आवश्यकता और इस्तेमाल के रिश्ते से हम परिचित हैं। हमें डाकिये की आवश्यकता होती है और उसे हमारी, फिर भी हम यह नहीं कहते कि हम डाकिये को प्रेम करते हैं। किंतु हम यह अवश्य कहते हैं कि हम अपनी पत्नी और बच्चों को प्रेम करते हैं, हालांकि हम उन्हें व्यक्तिगत तुष्टि के लिए ही इस्तेमाल कर रहे होते हैं और देशभक्त कहलाने के अपने दंभ के लिए उनका त्याग व बलिदान करने को भी तैयार रहते हैं। इस चलन को हम भली-भाँति जानते हैं, किंतु ज़ाहिर है कि यह प्रेम तो नहीं है। जो प्रेम इस्तेमाल करता हो, दोहन व शोषण करता हो और फिर अफ़सोस करता हो, वह प्रेम नहीं होता क्योंकि प्रेम मन या मस्तिष्क का मामला है ही नहीं। तो आइए अध्ययन-परीक्षण करें और पता लगाएं कि प्रेम क्या

होता है, सचमुच पता लगाएं, केवल शब्दों से ही न खेलें—बल्कि उस अवस्था का वास्तविक अनुभव करते हुए उसका अध्ययन करें। जब आप मुझे गुरु की तरह इस्तेमाल करते हैं और मैं आपको शिष्य की तरह इस्तेमाल करता हूँ, तब यह एक दूसरे का शोषण हो रहा होता है। इसी प्रकार, जब आप अपनी पत्नी व बच्चों को अपनी बढ़ती के लिए इस्तेमाल करते हैं तब यह उनका शोषण ही तो है, और निश्चय ही यह प्रेम नहीं है। जहां इस्तेमाल है वहां आधिपत्य भी अवश्य ही होगा जो हमेशा भय पैदा करता है, और भय के साथ-साथ आते हैं ईर्ष्या, डाह, शक-संदेह। जहां इस्तेमाल है वहां प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि प्रेम मन का मामला नहीं होता। किसी के बारे में सोचना उससे प्रेम नहीं है। आप किसी के बारे में केवल तब सोचते हैं जब वह आपके साथ नहीं होता, या वह गुज़र चुका होता है, या आपको छोड़ गया होता है, या जब वह आपको वह सब नहीं देता जो आप उससे चाहते हैं। तब आपके भीतर की अपूर्णता आपके मन की हलचल को शुरू कर देती है। जब वह व्यक्ति आपके साथ होता है तब आप उसके बारे में सोचते नहीं हैं, जब वह आपके निकटस्थ हो तब उसके बारे में सोचना तो परेशानी का सूचक है; आप यह मान कर चलते हैं कि वह तो आपके पास है ही। आदत दरअसल भूलने का और चैन से रहने का एक साधन है ताकि आप परेशान न हों। इस तरह इस्तेमाल की आदत निश्चित रूप से एक तरह से आपकी किलेबंदी करती है, आपके खुले कपाट बंद कर देती है, यह तो प्रेम नहीं है।

वह अवस्था क्या होती है जब इस्तेमाल न किया जा रहा हो? इस्तेमाल यानी वह विचार प्रक्रिया जो अपनी आंतरिक अपूर्णता को भरने के वास्ते एक साधन के रूप में अपनायी जाती है, चाहे विधि के रूप में या निषेध करते हुए। वह अवस्था क्या होती है जिसमें तुष्टि पाने का कोई भाव न हो? तुष्टि तलाशना मन का मूल स्वभाव है। सेक्स वह संवेदन है जो मन द्वारा रचित और चित्रित किया जाता है, और तब मन उस कृत्य में ले जाता है या

नहीं ले जाता। संवेदन विचार का सिलसिला होता है, जो कि प्रेम नहीं है। जब मन हावी हो रहा हो और विचारप्रक्रिया महत्त्वपूर्ण हो गई हो तब प्रेम नहीं है। इस्तेमाल की प्रक्रिया, सोचना, कल्पना करना, थामे रखना, घेरना, छोड़ देना—यह सब तो धुआँ है, किंतु जब धुआँ नहीं रहता तब प्रेम की लौ मौजूद होती है। कभी-कभी वह लौ हममें होती तो है, खूब और भरपूर, किंतु धुआँ पुनः लौट आता है क्योंकि हम ऐसी लौ के साथ लंबे समय तक नहीं रह पाते हैं जिसमें नज़दीकी का कोई एहसास नहीं होता, न तो एक के साथ और न ही अनेक के साथ, न वैयक्तिक और न ही निर्वैयक्तिक। अधिकतर लोगों को प्रेम और उसकी महक, उसका खुला-खिलापन कभी-कभार महसूस तो होता है किंतु इस्तेमाल करने का, आदत का, ईर्ष्या करने व कब्जा जमाने का, इकरारनामा बनाने और निरस्त करने का धुआँ—यह सब हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है और इसलिए प्रेम की लौ रहती नहीं। जब धुआँ होगा तब लौ नहीं होगी; किंतु जब हम इस्तेमाल के सच को समझ लेते हैं तब वह लौ मौजूद है। हम दूसरे को इस्तेमाल इसलिए करते हैं क्योंकि आंतरिक रूप से हम अभावग्रस्त हैं, आधे-अधूरे हैं, बौने और क्षुद्र हैं, अकेले हैं, और हम समझते हैं कि दूसरे को इस्तेमाल करने के ज़रिये हम इस सब से पलायन कर सकते हैं। ईश्वर का भी तो हम ऐसे ही एक पलायन के साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। ईश्वर से प्रेम करना सत्य से प्रेम करना नहीं है। आप सत्य से प्रेम नहीं कर सकते, इससे प्रेम करना तो एक ज़रिया भर है इसका इस्तेमाल करने का, कुछ और पाने के लिए जो आपको ज्ञात है, और इसीलिए उसमें एक निजी भय बना रहता है कि जो मुझे ज्ञात है, कहीं मैं उसे खो न बैटूँ।

आप प्रेम को तब जान पाएंगे जब आपका मन एकदम निश्चल होगा, तुष्टि पाने व पलायनों की अपनी तलाश से मुक्त। पहली बात तो यह है कि मन का पूरी तरह से अंत होना ज़रूरी है। मन विचार का परिणाम है, और विचार है केवल एक

गलियारा, कहीं पहुंचने का एक साधन। जीवन जब कहीं पहुंचने का साधन मात्र बन कर रह जाए, तब प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम तब अस्तित्व में आता है जब मन सहज रूप से चुप हो गया हो, चुप किया न गया हो, जब वह सत्य को सत्य की तरह और मिथ्या को मिथ्या की तरह देख पा रहा हो। मन जब खामोश होता है, मौन होता है, तब जो कुछ भी होता है, वह प्रेम का कर्म होता है, ज्ञान का नहीं। ज्ञान तो केवल अनुभव है और अनुभव प्रेम नहीं है। अनुभव प्रेम को नहीं जान सकता। प्रेम का आविर्भाव तब होता है जब हम स्व के पूरे प्रपंच को समझ लेते हैं, और स्वयं को समझना, स्वयं को जानना ही प्रज्ञा का आरंभ है।

‘प्रेम क्या है; अकेलापन क्या है’ से
अनुवाद : अचलेश चंद्र शर्मा

प्रश्न दो तरह से पूछा जा सकता है : एक तो जब आप किसी तकलीफ की सघनता से गुजर रहे हों, तब कोई प्रश्न पूछ सकते हैं; या फिर आप कोई प्रश्न पूछ सकते हैं बस बौद्धिक स्तर पर, जब आप आराम से हों, ऊब रहे हों। तो किसी दिन आप बुद्धि के तल पर जानना भर चाहते हैं, व किसी और दिन आप प्रश्न इसलिए पूछते हैं, क्योंकि आप तकलीफ में है, और उस व्यथा का कारण जानना चाहते हैं। आप सच में सिर्फ तभी जान पाते हैं जब आपका प्रश्न किसी तकलीफ, किसी दुख की तीव्रता से उठा हो, जब आप उस दुख से भागना न चाह रहे हों, जब आप उससे रू-ब-रू होने को तैयार हों; केवल तभी, आप मेरे उत्तर का मूल्य, एक मानव के लिए इसका मानवीय मूल्य समझ पाएंगे।

- जे. कृष्णमूर्ति
स्ट्रेसा, इटली, जुलाई 8, 1933

नये आरंभ से पूर्व

‘के’ की इस निश्चितता के बावजूद कि वह ‘परमसखा’ के साथ एकाकार हैं, उनका मानवीय पक्ष उनसे कभी नहीं दूर हुआ। उस साल ओहाय में उन्होंने, राजगोपाल ने, और जदू ने आपस में खूब बातें कीं, लड़े, गुस्सा हुए, जैसा कि ‘के’ ने लेडी एमिली को बताया। वे लोग खूब हँसे भी, एक-दूसरे को बेवकूफ भी बनाया और तंग भी किया। राजगोपाल की यादगार हँसी थी—कुछ दबी हुई पर तेज, जबकि ‘के’ की हँसी ज़ोरदार और गहरी थी। वह अपनी सारी जिंदगी शर्मिले बने रहे। अपरिचितों के आकर्षण का केंद्र बनने, उनसे घुलमिल कर बातचीत करने में उन्हें झिझक महसूस होती। लंदन में हमारे घर पर और श्रीमती बेसेंट के साथ भी वह जॉर्ज बर्नार्ड शॉ से मिल चुके थे। शॉ ने उन्हें अब तक उनकी निगाह में आए सबसे खूबसूरत मनुष्य के रूप में घोषित किया था। पर ‘के’ इतने शर्मिले थे कि उनसे शायद ही कभी बातचीत कर पाए।

शारीरिक तौर पर ‘के’ पूर्णतया एक सामान्य व्यक्ति थे। ‘के’ को ऐसे वातावरण में बड़ा किया गया था जहां यह माना जाता था कि जो मास्टर के शिष्य बनने की तैयारी कर रहे हैं उनमें यौन ऊर्जा का परिष्कार (ऊर्ध्वगमन) होना चाहिए, खासकर उसमें तो ज़रूर जो ‘लॉर्ड’ का माध्यम बनने जा रहा हो। सेक्स को लेकर ऐसी असहिष्णुता बाद में उनमें बिल्कुल नहीं रही थी; हालांकि उन्होंने इसे कभी ऐसे मसले के रूप में नहीं देखा था जिसे लेकर समस्या बनायी जाए। उनकी शक्ल-सूरत कुछ ऐसी थी कि यह नामुमकिन था कि स्त्रियां उनके प्यार में न पड़ें... जब कभी सार्वजनिक रूप से वह किसी स्त्री के साथ दिख जाते तो अखबार में तुरंत सगाई की खबर आ जाती।

उस साल (1929) ओहाय कैंप से पहले छः हफ्तों के दौरान 'के' के सिर और रीढ़ की हालत बहुत खराब रही। वह इतना थका हुआ महसूस कर रहे थे कि एक नये डॉक्टर ने उन्हें चेतावनी दे दी कि अगर उन्होंने आराम नहीं किया तो बीच-बीच में जो ब्रोंकाइटिस के दौरे पड़ते हैं वे टी.बी. की बीमारी तक ले जा सकते हैं। इस पर उन्होंने ग्रीष्म काल की अपनी सारी वार्ताएं रद्द कर दीं—इसमें लंदन में क्वीन्स हॉल के तीन व्याख्यान भी शामिल थे। अपने को उन्होंने ओहाय, ओमन कैंप और अर्ड गैदरिंग तक ही सीमित करने का फैसला किया।

ओहाय कैंप 27 मई को शुरू हुआ। इसके सहभागियों की संख्या अब दूनी हो गई थी। ओक ग्रीव की अपनी एक वार्ता में उन्होंने कहा : “मैं अब बिना किसी अहंकार के, समुचित समझ और मन-मस्तिष्क की समग्रता के साथ, कहता हूँ कि मैं ही वह पूर्ण ज्वाला हूँ जो जीवन का वैभव है, और जिस तक सारे मनुष्यों और सारे संसार को आना है।”

कैंप में यह अफवाह फैल गई थी कि वह शीघ्र ही 'ऑर्डर ऑव द स्टार' को भंग करने वाले हैं। कुछ सप्ताह बाद उन्होंने यह कर भी दिया। 3 अगस्त को ओमन कैंप की पहली बैठक में, श्रीमती बेसेंट की मौजूदगी में 3000 'स्टार' के सदस्यों के सामने (हजारों डच लोग उन्हें रेडियो पर भी सुन रहे थे) उन्होंने अपने ही इतिहास के एक युग का अवसान कर दिया।

-जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी' से
अनुवाद : मुकेश गुप्ता

जिस मन ने विचार की समस्त गतिविधि को समझ लिया है,
वह असाधारण रूप से शांत, पूरी तरह मौन हो जाता है।

- जे. कृष्णमूर्ति
'इम्पॉसिबल क्वेश्चन' से

संवाद की गंगा में अंतर्मौन के द्वीप

2012 की वार्षिक गैदरिंग का थीम रहा : जीवन और मृत्यु। भारत के कोने-कोने से आए कृष्णमूर्ति को सुनने-पढ़ने वाले मित्रों का यह चारदिवसीय संवाद-प्रवाह था, जिसके बीच-बीच में मौन के प्यारे द्वीप थे। कार्यक्रम संयोजना इस प्रकार से की गयी थी कि सहभागियों को प्रकृति से और स्वयं से संवाद हेतु पर्याप्त अवकाश रहे। पहले दिन श्री राजेश दलाल ने थीम की बारीकियों को स्पष्ट करते हुए मनुष्य मन में चिरस्थापित जीवन और मृत्यु के विभाजन की तथ्यपरकता पर प्रश्नचिह्न लगाया। आगामी दिवस श्री समदोंग रिनपोछे के उद्बोधन ने हमें यह ध्यान दिलाया कि किसी भी विषय को गहराई से समझने के लिए पूर्वग्रहों और पूर्वज्ञानकारी के तत्काल हस्तक्षेप के बिना उसे मौन मन के साथ ग्रहण करना आवश्यक है। तीसरे दिन श्री कंदास्वामी ने एक दृष्टांत के माध्यम से इस सच्चाई को उजागर किया कि जीवन के अनुसंधान की दिशा में जाते-जाते तमाम छोटी-बड़ी आसक्तियाँ हमें किस कदर डिगाती-भरमाती रहती हैं। अन्तिम दिन एक संगोष्ठी (सिम्पोज़ियम) में श्री राजेश दलाल, स्वामी चिदानंद, श्री चैतन्य नागर तथा सुश्री निगहत गांधी ने थीम से जुड़े प्रश्नों पर चर्चा की जिसमें एक निश्चित समयोपरांत श्रोता-सहभागियों ने भी प्रश्नों तथा अवलोकनों को अभिव्यक्ति दी। गैदरिंग का समापन प्रोफेसर पद्मनाभन् कृष्णा ने हमें यह स्मरण दिलाते हुए किया कि गवेषणा का, इन्क्वाइरी का जो जज़्बा हम यहाँ से लेकर पुनः अपने दैनिक, क्रमिक जीवन की ओर लौट रहे हैं, सजग-सटीक अवलोकन के माध्यम से उसे जीवंत रखना हममें से हर एक का सहज दायित्व है।

- योगेश तिवारी

‘समय के अंत’ का अध्ययन

कृष्णमूर्ति रिट्रीट सेंटर, उत्तरकाशी में पहली बार रिट्रीट कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कदाचित फॉउंडेशन में पहली बार किसी पुस्तक को आधार बनाकर एक महीने की रिट्रीट का आयोजन हुआ हो। 9 प्रतिभागियों की सूची के साथ शुरू हुई इस रिट्रीट में शीत की चुनौती से प्रभावित होकर कुछ ही दिनों में 3 प्रतिभागियों को वापस जाना पड़ा। पर उधर संयोग से राजघाट स्कूल के दो पूर्व छात्रों का आगमन हुआ। इन युवा सहभागियों के पूरे उत्साह और गहन जिज्ञासा के साथ शामिल होने से एक दिलचस्प माहौल निर्मित हुआ और उनके प्रश्नों की ताज़गी ने रिट्रीट को एक नया आयाम दिया।

डेविड बोह्र और कृष्णमूर्ति के मध्य हुए इन वार्तालापों की शृंखला के ऑडियो और असंशोधित प्रतिलेख को सुनते-पढ़ते और बीच-बीच में अपने भीतर उठते प्रश्नों पर चर्चा करते अक्सर खुले नीले आसमान के नीचे यह कार्यक्रम चला। जाड़े की गर्म धूप और सुबह-शाम अग्नि के सान्निध्य ने संवाद और परिचर्चा में अपना सहज योगदान बनाए रखा। बेशक भागीरथी का मधुर स्वर और पक्षियों का कलरव भी उसमें शामिल रहे। संध्याकालीन भोजन उपरांत अध्ययन कक्ष में गर्म अंगारों को तापते हुए अपने-अपने प्रश्नों को लेकर उन पर मिलजुल कर मंथन का दौर चलता।

लंबी सैर के लिए निकलना, कभी अकेले तो कभी संग-साथ, कभी डूंडा बाज़ार की तरफ या रनाड़ी गांव के इर्दगिर्द, तो कभी पहाड़ की तरफ; और ऊपर कहीं बैठकर आडियो को सुनना और चर्चा-मंथन करना, नीचे हरे-भरे सौंदर्य का लुत्फ और ऊपर आकाश की सघन नीलिमा का आह्लाद—सीधी-सादी असलियत का बयां करना भी नामुमकिन लगता है।

जैसे-जैसे कार्यक्रम की सघनता और गति बढ़ती गयी अधिकतर सहभागियों की भावना यही रही कि अगली बार इस तरह का प्रयास पुनः किया जाय।

‘एंडिंग आफ टाइम’ का श्रवण-मंथन कुछ इस प्रकार रहा:

“मनुष्य का यह दुर्भाग्य ही रहा है कि सदियों से वह तमाम आघातों, संकटों, युद्धों और व्यक्तिगत दुखों को जीता आया है।”

“वह इन आशाहीन दिखायी देती स्थितियों से बाहर आने की हर मुमकिन कोशिश भी कर चुका है। बौद्धिक रूप से भी वह अपनी इस हालत को समझने की कोशिश करता रहा है, विश्लेषण-आंकड़ों के द्वारा, नशा, योग और ध्यान के तरीकों से, अपने को पूरी तरह भुलाकर या नियंत्रण कर, किसी का अनुगमन कर, व्रत आदि के द्वारा, लेकिन कर्ता, ‘अंधकार का केंद्र’, स्व ज्यों-का-त्यों बना हुआ है।”

“यहां तक कि विज्ञान, जो कि संसार की सभी चीजों को सफलतापूर्वक आंक चुका है, वह भी इस मामले में विफल ही रहा है।”

“तो सभी व्याख्याएं, तरकीबें और उन्हीं के घेरे में उलझे रह कर बार-बार चक्कर काटते रहना—यह हम सब जानते हैं।”

“आदमी जो कि सदियों से इसी तरह ज़िंदगी जीता आया है, लाखों सालों बाद वह आज भी वहीं खड़ा है जहां वह शुरूआत में था।”

“तो केवल एक ही बात बचती है कि हमें यह तलाशना होगा, खोजना होगा कि हमने जो कुछ भी किया है उसके सार को देख पायें। उसकी व्यर्थता को।”

“क्या यह पता लग जाने पर एक आघात सा नहीं लगता कि हमारा मन, हमारा दिमाग और तमाम जानकारियां एकदम बौनी हैं, निहायत उथली हैं, सारहीन हैं?”

“हमारी सारी व्याख्याएं, टीकाएं, सारे संघर्ष, सभी कुछ जो भी हमने इन सालों साल, हजारों-लाखों सालों से इकट्ठा किया है वाकई में किसी काम का नहीं। उसकी कतई सार्थकता नहीं। इस सबने हमें किसी टीका-व्याख्या के प्रति और भी सतर्क बना दिया है। सभी व्याख्याओं को देख-परख लेने के बाद हम संवेदनशील हो गये हैं, और भी ज़्यादा सतर्क।”

“व्याख्याएं उस नाव की तरह हैं जिस पर सवार होकर पार जाना है, और उस पार बैठा वह व्यक्ति कहता है कि ‘कोई नाव नहीं है’। लेकिन वह कहता है, “आओ, पार करो इसे।” क्या वह कुछ असंभव सा करने के लिए कह रहा है?”

- राजेश और अरविंद

नया प्रकाशन

आज़ादी की खोज

आज़ादी इन्सान का सबसे बड़ा सपना रही है। लेकिन आज़ादी के मायने क्या हैं? आज़ादी और ज़िम्मेदारी का सह-संबंध क्या है? जो कुछ हमने जाना है, अनुभव किया है, जो धारणाएं हमें सँजो रखी हैं, जो शास्त्र-प्रमाण हमने अपने भीतर गढ़ लिए हैं, क्या उस सबसे आज़ाद हुए बिना सृजन संभव है? ‘ऑन फ्रीडम’ का श्री बलराम शर्मा द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद ‘आज़ादी की खोज’ इन्हीं प्रश्नों की व्यापक विमर्श-यात्रा है। जे. कृष्णमूर्ति आज़ादी की अर्थवत्ता को नए आयाम देते हैं, और उसे हमारे दैनिक जीवन से जोड़ देते हैं। तब यह यात्रा केवल बुद्धिविलास बन कर नहीं रह जाती, प्रायोगिक धर्म बन जाती है जिसे हर कदम पर आज़माया जा सकता है, आज़माया जाना चाहिए।

राजपाल एंड सन्ज द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या 167 है, तथा इसकी कीमत 175 रु. रखी गयी है।

आने वाली पुस्तकें

1. जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी

1986 में 90 वर्ष की आयु में जब कृष्णमूर्ति की मृत्यु हुई, मेरी लट्यन्स द्वारा लिखित उनकी वृहदाकार जीवनी के दो खंड ‘द यिअर्ज़ ऑव अवेकनिंग’ (1975) तथा ‘द यिअर्ज़ ऑव फुलफिलमेंट’ (1983) प्रकाशित हो चुके थे। तीसरा खंड ‘दि ओपन डोर’ 1988 में प्रकाशित हुआ। इन तीनों खंडों को मेरी लट्यन्स ने ‘द लाइफ एंड डेथ ऑव जे. कृष्णमूर्ति’ नाम से

एक ही पुस्तक में समाविष्ट किया है। 'जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी' इसी पुस्तक का श्री मुकेश गुप्ता कृत अनुवाद है जो राजपाल एंड सन्ज़ द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

मेरी लट्यन्स ही के शब्दों में, "मुझे वह वक्त याद नहीं है, जब मैं कृष्णमूर्ति को नहीं जानती थी।" थियोसॉफी द्वारा उद्घोषित नये मसीहा के रूप में जब युवा कृष्णमूर्ति का पहली बार इंग्लैंड आना हुआ था, तब से उनके अंतिम वर्षों तक के जीवन को मेरी लट्यन्स ने एक मित्र के तौर पर देखा है, और उनकी समग्र जीवन-यात्रा समझने का जतन किया है। "कृष्णमूर्ति कौन या क्या थे?" इस प्रश्न के उत्तर का अन्वेषण उनके जीवन और उनकी मृत्यु के संदर्भ में इन पृष्ठों में किया गया है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार, उन्होंने जो कुछ कहा है, वह सभी के लिए समान रूप से प्रासंगिक है। हम स्वयं सत्य को खोज सकें, इसमें आने वाली हर बाधा से हमें मुक्त करना ही उनका उद्देश्य है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं और उनके जीवन में कहीं कोई फर्क नहीं है—अतएव उनका जीवन भी उनकी शिक्षा ही है; जीवन, जिसकी व्यापकता में मृत्यु भी समाहित है। कृष्णमूर्ति के सुझाव पर ही मेरी लट्यन्स ने उनकी जीवनी लिखी थी, और लेखन के दौरान कृष्णमूर्ति का पूरा सहयोग भी उन्हें मिला था। द्वितीय खंड को लिखते समय कृष्णमूर्ति ने उन्हें कहा था, "यदि मैं यह जीवनी लिख रहा होता तो शुरूआत 'उस रिक्त मन' से करता।"

क्या यह रिक्त मन ही 'के' (कृष्णमूर्ति) को समझने की कुंजी है— एक व्यक्ति के तौर पर और शिक्षक के तौर पर भी? कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं को समझने के लिए उनके जीवन की, उनकी मृत्यु की विशदता को जानना-समझना महत्त्वपूर्ण है। एक निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व की अद्भुत गाथा है यह जीवनी।

2. प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?

हमारी जीवन जीने की शैली को देखकर यह ज़ाहिर होना लाज़मी है कि हम भीतर ही भीतर कितने तनहा हैं, अकेलेपन के दर्द से पलायन के तमाम रास्ते ढूँढ लेते हैं और ऐसा जीवन जीते हैं जिसमें प्रेम नहीं। हम अपने जीवन को समस्या क्यों बना देते हैं? क्या प्रेम मन की उपज है? क्या विचार प्रेम होता है? आखिर क्यों हम सुख-सुविधा की आकांक्षा लिये अपने छोटे से दायरे में जीते हैं। हमारे संबंध खोखले क्यों हैं? सुख, सौंदर्य और प्रेम को हमने इतना बीना क्यों कर दिया कि अपने मन के खालीपन को भरने के लिये हम अपने संबंधों का भी शोषण करने से नहीं कतराते। किसी समस्या को सुलझाने के लिये उससे भिड़ जाते हैं या दूर भागने की कोशिश में एक डरा हुआ, हिंसा से भरा हुआ जीवन जीते जाते हैं। हम जो हैं उसे कैसे समझें? इस तरह के सवाल को हमारे सामने

लाती यह पुस्तक, थीम बुक 'लव एंड लोनलीनेस' का श्री अचलेश चंद्र शर्मा द्वारा किया गया अनुवाद है।

राजपाल एंड संज द्वारा प्रकाशित होने जा रही यह पुस्तक शीघ्र ही आपके समक्ष होगी।

पुस्तक मेलों में कृष्ण जी की किताबें :

पुस्तक मेलों तथा ऐसे अन्य आयोजनों में कृष्णमूर्ति साहित्य उपलब्ध रहे, यह महत्त्वपूर्ण है। विशेषकर युवावर्ग की इन अवसरों पर कृष्ण जी व उनकी शिक्षाओं से पहली पहचान हो पाती है। पटना की तरह ही लखनऊ और इलाहाबाद के पुस्तक मेलों में भी कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया के प्रकाशनों की प्रभावी उपस्थिति रही। इनके अलावा, वाराणसी स्थित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में आयोजित प्रदर्शनी में वसंत महिला महाविद्यालय द्वारा लगाए गए स्टाल पर कृष्णमूर्ति की पुस्तकों को विद्यार्थियों एवं शिक्षकों द्वारा हाथों-हाथ लिया गया।

- कृष्णा अरोड़ा

शिक्षा-एक समग्र दृष्टि

कृष्णमूर्ति अध्ययन अवकाश : 11-14 अप्रैल 2013

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, वाराणसी में 11 से 14 अप्रैल 2013 तक एक स्टडी रिट्रीट का आयोजन किया जा रहा है जिसका विषय है : *A Holistic Approach To Education*. जे. कृष्णमूर्ति का शिक्षा से गहरा सरोकार रहा है। इस रिट्रीट का उद्देश्य है शिक्षा तथा स्वशिक्षा से संबंधित बुनियादी सवालों की पड़ताल और अपने रोजमर्रा के जीवन एवं आपसी सम्बन्धों में उनका अन्वेषण। विवरण हेतु संपर्क करें : कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 ईमेल : kcentrevns@gmail.com

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहायो, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

आगामी प्रकाशन

जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी

मेरी लट्यन्ज कृत कृष्णमूर्ति की जीवनी का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद।

नये प्रकाशन

आज़ादी की खोज

‘ऑन फ्रीडम’ का यह सुरुचिपूर्ण हिन्दी अनुवाद राजपाल एंड सन्ज
द्वारा सद्यः प्रकाशित हुआ है।

कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

संस्कृति का प्रश्न

‘थिंक ऑन दीज़ थिंज़’ का संशोधित हिंदी संस्करण।

सुखी वही जो कुछ नहीं

कृष्णमूर्ति द्वारा एक युवा मित्र के नाम लिखे गये पत्रों से उद्धृत
अंतर्दृष्टियों का यह संचयन दैनिक जीवन से जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश
डालता है।

प्रथम और अंतिम मुक्ति (द्विभाषी संस्करण)

एक संग्रहणीय पुस्तक। बाँये पृष्ठों पर मूल अंग्रेजी पाठ तथा दाँये पृष्ठों
पर उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के
अध्ययन में एक भिन्न आयाम।

वर्ष में तीन बार प्रकाशित निःशुल्क न्यूज़-लैटर

स्वयं से संवाद

मंगाने के लिए अपना पता भेजें।

सूचनाओं तथा संपूर्ण पुस्तक सूची हेतु संपर्क करें-

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001

ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

‘कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया’ के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम
प्रिंटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : विजय छाबड़ा